AVADH LAW COLLEGE

UMA SHANKAR

LL.B.3Year1Sem& LL.B.5Year1Sem

(UNIT-1)

अंतर्राष्ट्रीय विधि

अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति

अंतर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति से तात्पर्य है कि क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि को वास्तव में विधि कहा जा सकता है, अर्थात क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि उसी प्रकार से विधि है, जिस अर्थ में राष्ट्रीय विधि है? यह प्रश्न बहुत ही विवादास्पद है। इस विषय पर प्रारंभ से ही विधि शास्त्रियों के विचारों में काफी भिन्नता रही है। यद्यपि राज्यों के संबंधों को विनियमित करने वाले नियमों को पिछले लगभग 200 वर्षों से अंतर्राष्ट्रीय विधि कहा जाता रहा है, फिर भी कई विधि शास्त्री इसके बावजूद, कि वे अंतर्राष्ट्रीय विधि शब्द का प्रयोग करते रहे हैं, इस इस प्रश्न पर संदेह करते हैं कि क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में विधि है? इस संबंध में एक मत यह है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में विधि नहीं है। यह केवल नैतिक बल के आचरण की संहिता है। दूसरा मत है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तविक विधि है तथा इसे उसी प्रकार विधि के रूप में माना जाता है, जैसे राज्यों की विधि को, जो मुख्य रूप से व्यक्तियों पर बाध्यकारी होती है। क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में विधि है? इस प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर करता है कि विधि शब्द की परिभाषा क्या है? इसी से यह निश्चित किया जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में विधि है या नहीं।

ऑस्टिन का मत ऑस्टिन के अनुसार विधि शब्द का प्रयोग ऐसे नियमों के लिए करना चाहिए, जो प्रभुत्व संपन्न शक्ति द्वारा निर्मित की गई हो तथा जिस का उल्लंघन होने पर इसी शक्ति द्वारा दंड दिए जाने की व्यवस्था हो। दूसरे शब्दों में

विधि को प्रभुत्व संपन्न शक्ति द्वारा अधिनियमित होना चाहिए। इस परिभाषा के दो महत्वपूर्ण तत्व हैं। प्रथम, विधि प्रभुत्व संपन्न शक्ति द्वारा निर्मित की गई हो अर्थात जो विधि प्रभुत्व संपन्न शक्ति द्वारा निर्मित नहीं की जाती है, उसे विधि नहीं माना जा सकता, और दूसरे, इसे प्रभुत्व संपन्न शक्ति द्वारा लागू किया जाना चाहिए अर्थात यदि विधि का उल्लंघन किया जाता है, तो इसके पीछे दंड देने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। किसी नियम को समुचित विधि कहे जाने के लिए इन दोनों तत्वों की विद्यमानता आवश्यक है

ओपन हाइम का मत--- ओपन हाइम के अनुसार विधि एक समुदाय के अंतर्गत मानवीय व्यवहार के उन नियमों का समूह है, जिसे समुदाय की सामान्य सम्मति से बाह्य शक्ति द्वारा लागू किया जाता है। इसी परिभाषा के अनुसार विधि में तीन तत्व होने चाहिए। प्रथम, एक समुदाय होना चाहिए, दूसरे, उस समुदाय के अंतर्गत मानवीय व्यवहारों के लिए नियमों का समूह होना चाहिए, ताकि समुदाय को सुव्यवस्थित ढंग से शासित किया जा सके। सभी समुदाय, विधि के शासन को स्वीकार करते हैं क्योंकि वे मनुष्य तथा राष्ट्रों की गरिमा को सम्यक सम्मान तथा संरक्षण प्रदान करने की इच्छा रखते हैं, तथा तीसरे, उस समुदाय की सामान्य समिति होनी चाहिए कि यह नियम बाय शक्तियों द्वारा लागू किए जाएंगे। ओपन हाइम के अनुसार विधि की परिभाषा के तीनों ही तत्व अंतर्राष्ट्रीय विधि में पाए जाते हैं।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में विश्व को वास्तव में अंतरराष्ट्रीय समुदाय माना जाता है। राज्यों के लिए, जो विश्व समुदाय के सदस्य हैं, रूढ़ियों तथा संधियों के द्वारा नियमों को बनाया गया है। राज्य इन नियमों को मान्यता देते हैं तथा इनका पालन करते हैं, और इस बात पर विश्वास करते हैं कि उनके आचरण को विनियमित करने के लिए नियमों का समूह अस्तित्व में है यह नियम राज्यों द्वारा विदेशी कार्यालयों, राष्ट्रीय न्यायालय तथा अन्य सरकारी अंगों

के माध्यम से प्रयोग में लाए जाते हैं। राज्य इस बात को मानते हैं वह अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों से विधिक रुप से बाध्य हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तव में विधि है, ऑस्टिन की परिभाषा स्वीकार कर लेने पर भी स्पष्ट हो जाता है। ऑस्टिन ने 19वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय विधि को " सार्थक नैतिकता" के रूप में माना था। वास्तव में उनका कहना उचित था क्योंकि उस समय अंतरराष्ट्रीय समुदाय में विधान, न्यायालय, अनुशास्तियां और प्रवर्तन तंत्र की कमी निश्चित रूप से थी। इन सब को ध्यान में रखकर यदि उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि सही अर्थ में विधि नहीं है, तो शायद वे गलत नहीं थे। किंतु जिस समय परिभाषा दी गई थी, तब से अंतर्राष्ट्रीय विधि में मूलभूत विकास हुआ है। वर्तमान समय में बहुराष्ट्रीय संधियों तथा अभिसमयों के परिणाम स्वरुप अंतरराष्ट्रीय विधायन अस्तित्व में आ गया है। राज्यों के अभ्यास से यह स्पष्ट होता है कि वह स्वयं को ऐसी संधियों द्वारा बाध्य समझते हैं। यदि नियमों का उल्लंघन किसी एक राज्य द्वारा किया जाता है, तो उसके विरुद्ध न केवल व्यक्तिगत राज्य द्वारा बल्कि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा भी सामूहिक अनुशास्तियाँ की जाती है। वर्तमान समय में, अंतरराष्ट्रीय समुदाय के पास अंतरराष्ट्रीय न्यायालय है, जिसका निर्णय मामले के पक्षकारों पर बाध्यकारी होता है। यदि न्यायालय द्वारा प्रदत्त निर्णय के अधीन एक पक्षकार अपने लिए बाध्यताओं का पालन नहीं करता है, तो संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद न्यायालय के निर्णय को लागू करने के लिए सशक्त है। अंतर्राष्ट्रीय विधान, न्यायालय, शास्ति, प्राधिकारी तथा प्रवर्तन तंत्र का होना वर्तमान शताब्दी का महत्व पूर्ण विकास है। इन विकारों को लक्ष में रखकर अंतर्राष्ट्रीय विधि को विधि कहने में शायद कोई भी नहीं हिचकिचाएगा।

अंतर्राष्ट्रीय विधि दुर्बल विधि है

अंतर्राष्ट्रीय विधि वास्तविक अर्थ में विधि है। राज्यों के अभ्यास तथा अंतरराष्ट्रीय न्यायिक संस्थानों के अभ्यास अंतर्राष्ट्रीय विधि के विधिक चरित्र को दर्शाते हैं। किंतु यह मानना होगा कि यह राष्ट्रीय विधि की अपेक्षा एक दुर्बल विधि है। इसके नियम उतने प्रभाव कारी नहीं हैं, जितने राष्ट्रीय विधि के नियम होते हैं। इसके निम्न कारण हैं-

- अंतर्राष्ट्रीय विधि में प्रभावशाली विधाई शक्ति की कमी है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम, जो मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय संधियों तथा रूढ़ियों के परिणाम स्वरूप बने हैं, राज्य के नियमों से क्षमता में तुलनीय नहीं है। कभी-कभी संधियों के उपबंधो का पक्षकार अपनी इच्छा अनुसार निर्वचन करते हैं।
- यद्यपि अंतरराष्ट्रीय समुदाय में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय है, जिसे वर्ल्ड कोर्ट के नाम से जाना जाता है, फिर भी इसको सभी राज्यों के विवादों का निपटारा करने की अधिकारिता प्राप्त नहीं है। इस न्यायालय में राज्यों की सहमति से ही वाद दाखिल किया जा सकता है। किंतु बहुत से राज्यों ने न्यायालय को अपने विवादों को निर्णीत कराने का क्षेत्राधिकार अनिवार्य रूप से नहीं दिया है।
- अंतरराष्ट्रीय समुदाय में प्राप्त प्रवर्तन तंत्र प्रभावशाली नहीं है राष्ट्रीय विधि के अंतर्गत यदि कोई व्यक्ति अपराध करता है तो उसको राज्य में विधि के अनुसार दंड मिलता है किंतु अंतर्राष्ट्रीय विधि में हमेशा ऐसा नहीं है। कई ऐसे मामलों में राज्यों के विरुद्ध कोई भी प्रवर्तन कार्यवाही नहीं की गई यद्यपि उन राज्यों के द्वारा अवैध कृत्य किए गए थे। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही उस समय नहीं की गई जब उसने ग्रेनेडा और इराक में आक्रमण किया था।

- अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों का राज्यों द्वारा बार-बार उल्लंघन किया जाता है तथा अधिकारों के दावेदार विधि को अपने हाथों में ले लेते हैं। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र चार्टर ने आत्म सहायता के क्षेत्र को कम कर दिया है, फिर भी अंतर्राष्ट्रीय विधि को पूर्ण रुप से लागू नहीं किया जा सकता है।
- राष्ट्रीय विधि के प्रभाव कारी होने का एक बहुत बड़ा कारण है कि उनकी इकाइयां अत्यधिक दुर्बल हैं। इस कारण इनके नियमों का उल्लंघन करने वाले के ऊपर प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय समुदाय एक ऐसा समुदाय है, जहां कुछ इकाइयां छोटी और निर्बल है, वही कुछ इकाइयां काफी शक्तिशाली है। इन शक्तिशाली इकाइयों को अंतर्राष्ट्रीय विधि की परिधि में लाना अत्यधिक कठिन हो जाता है। जब तक अंतरराष्ट्रीय समुदाय इन शक्तिशाली इकाइयों से अधिक शक्तिमान नहीं हो जाता, तब तक उसके द्वारा निर्मित नियम ऐसी इकाइयों की स्वेच्छा पर ही लागू होते रहेंगे।

इन सभी कारणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधि की अपेक्षा एक दुर्बल विधि है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि विधि शास्त्र का लुप्त प्राय बिंदु है---

हालैंड ने अंतर्राष्ट्रीय विधि को विधिशास्त्र का लुप्त प्राय बिंदु कहा है। उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि को विधिशास्त्र का अंग नहीं माना जा सकता है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि और विधिशास्त्र परस्पर समानांतर हैं और इसी कारण दोनों ही एक दूसरे से विशिष्ट एवं पृथक हैं। यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ही लुप्त प्राय बिंदु पर एक ही है किंतु वास्तव में दोनों पृथक हैं। उनके कथा अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि को विधि किस श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि ना तो यह किसी प्रभुता संपन्न अधिकारी द्वारा निर्मित किए जाते हैं और ना ही इसके नियमों के उल्लंघन करने पर कोई अनुशास्ति है। उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय

विधि को केवल सौजन्यतावश (courtesy)ही विधि की श्रेणी में ही रखा जा सकता है। इन नियमों को विधि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। हालैंड के कथन को वर्तमान समय में, जबकि अंतर्राष्ट्रीय विधि में बहुत अधिक परिवर्तन हो चुके हैं, उचित नहीं कहा जा सकता। अंतर्राष्ट्रीय विधान, न्यायालय, अनुशास्ति, प्राधिकारी तथा प्रवर्तन तंत्र का होना वर्तमान शताब्दी के महत्वपूर्ण विकास हैं। इन सभी पहलुओं को देखने से प्रतीत होता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि और विधिशास्त्र एक दूसरे से पृथक नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि विधि शास्त्र की ही एक शाखा है। वर्तमान समय में राज्यों के अभ्यास से यह प्रमाणित हो गया है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि सच्चे मायने में विधि है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि की परिभाषा

अंतर्राष्ट्रीय विधि को आरंभ में राष्ट्रों की विधि कहा जाता था, किंतु राष्ट्रों के आपसी संबंधों को विनियमित करने वाले नियमों को राष्ट्रों की विधि कहना भ्रामक लगता था क्योंकि इस शब्द से ऐसा आभास होता था कि इसमें कई राष्ट्रों की विधि का अध्ययन किया जाता है। इसी कारण सर्वप्रथम बेंथम ने सन 1789 में इस पद के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय विधि शब्द का प्रयोग किया और तभी से यह प्रचलित है। अधिकांश परंपरागत न्यायाधीशों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि को एक ऐसी विधि के रूप में माना है, जो राष्ट्रों के पारस्परिक संबंधों को भी विनियमित करती है और इसी अर्थ में इस को परिभाषित किया गया है

ओपन हाइम के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि नियमों का वह समूह है जो राज्यों के पारस्परिक संबंधों में उन नियमों पर आबद्धकर कर है। यह नियम प्राथमिक रूप से वे नियम है जो राज्यों के संबंध को शासित करते हैं, किंतु अकेले राज्य ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय नहीं हैं। अंतरराष्ट्रीय संगठन तथा कुछ हद तक व्यक्ति भी अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा अधिरोपित कर्तव्यों के विषय हो सकते हैं।

स्टार्क के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि, विधि का वह समूह है, जिनका अधिकांश भाग आचरण के उन सिद्धांतों तथा नियमों से बना है, जिन का अनुपालन करने के लिए राज्य अपने को बाध्य करते हैं। अतः वह अपने पारस्परिक संबंधों में इसका सामान्यता अनुपालन करते हैं तथा इसमें यह भी सम्मिलित है—

1- अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों या संगठनों की कार्यप्रणाली एवं उनके पारस्परिक संबंध तथा राज्यों एवं व्यक्तियों के संबंधों के वैधानिक नियम तथा,

2- कुछ वैधानिक नियम जो व्यक्तियों तथा गैर राज्य इकाइयों के अधिकारों तथा कर्तव्यों के संबंध में अंतरराष्ट्रीय समुदाय से संबंधित हैं

विनोग्रेडाफ के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि, राष्ट्रों के बीच सामान्यता प्रचलित मत एवं मनोभावों से बनती है।

स्वार्जनबर्जर के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि उन विधिक नियमों का समूह है, जो प्रभुत्व संपन्न राज्यों तथा ऐसी अन्य इकाइयों पर लागू होती है जिन्हें अंतरराष्ट्रीय व्यक्तित्व प्राप्त है।

अंतर्राष्ट्रीय विधि का आधार (Basis of International law)

वर्तमान समय में अंतर्राष्ट्रीय विधि को सच्चे अर्थों में विधि माना गया है। राज्य अपने अभ्यास में इसके नियमों का पालन करते हैं। उठता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का आधार क्या है। अर्थात इस विधि के नियम किन बातों पर आधारित हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार के संबंध में दो प्रमुख सिद्धांत प्रचलित हैं---

1-- प्रकृति वादी(Naturalist) सिद्धांत

2-सार्थकता वादी(Positivists) सिद्धांत

1- **प्रकृति वादी सिद्धांत**- 16 वी तथा 17वीं शताब्दी के अधिकतर विधि शास्त्री इस्मत के थे कि अंतर्राष्ट्रीय विधि प्रकृति विधि के नियमों पर आधारित है। वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय विधि प्रकृति विधि का एक भाग है। उनके अनुसार विधि की एक ऐसी प्रणाली विद्यमान है, जो ईश्वर या तर्क या नैतिकता से

उत्पन्न होती है। उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि इसी प्रणाली पर आधारित है। इस मत के प्रमुख समर्थक **ग्रोशियस, पुफेन्डार्फ, वाट्टेल** है। इन विधि शास्त्रीयों का लेखन धर्म परक विद्वानों, जैसे सैंट अगस्टाइन, विटोरिया तथा सुआरेज के कार्यों द्वारा अत्यधिक प्रभावित था। यह विधि बेत्ता तर्क देते हैं कि सभी विधियां ईश्वर से प्राप्त होती है तथा ईश्वर की सर्वोच्च विधि को दैवीय विधि मानते हैं। इसलिए प्राकृतिक विधि के अपेक्षा दैवीय विधि का लागू होना उचित है। प्राकृतिक विधि के नियम मूलभूत तथा अपरिवर्तनीय होते हैं, जो मानव समाज में शासकों तथा शासितों की इच्छा तथा सम्मति को आगे बढ़ाते हैं। इसलिए उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा सभी अन्य विधियां प्राकृतिक विधि पर आधारित हैं।

2- **सार्थकता वादी सिद्धांत**--- अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार के संबंध में दूसरा मत सार्थकता वादी सिद्धांत के विधिशास्त्रियों द्वारा दिया गया है। उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों की पारस्परिक सम्मती पर आधारित है। जिन नियमों में राज्य की सहमति प्राप्त नहीं होती है, वह नियम उस राज्य पर बाध्यकारी नहीं होते हैं। विधि शास्त्री बाईंकरश्योक का मत है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का आधार राज्यों की सहमति है। राज्यों की सम्मति किसी भी नियम का पालन करने के लिए दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती हैं, पहला, राज्यों की अभिव्यक्त सम्मति द्वारा तथा दूसरा, विवक्षित सम्मति द्वारा। अभिव्यक्त सम्मति संधि करके या सरकारों के ज्ञापित समागम द्वारा दी जाती है, जबकि विवक्षित सम्मति स्थापित प्रथा, अर्थात रूढ़ि का पालन कर दी जा सकती है। इस प्रकार रूडी तथा संधि, जिसके द्वारा राज्य की सहमति प्राप्त की जाती है, अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार हैं। जब तक कोई राज्य विशेष अंतर्राष्ट्रीय विधि के किसी विशिष्ट नियम को अपनी सम्मति नहीं देता, तब तक उस राज्य पर वह नियम बाध्यकारी नहीं माना जा सकता। मार्टेस तथा अंजिलोटी भी इस मत के समर्थक हैं

अंतर्राष्ट्रीय विधि के आधार के संबंध में उपर्युक्त दोनों मतों में से कौन सा मत उचित है? इस प्रश्न के संबंध में यह कहा जा सकता है कि कोई भी मत अकेले अंतर्राष्ट्रीय विधि का आधार नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि दोनों ही सिद्धांतों से प्रभावित है। इसी कारण धार्मिक शाखा के विधिशास्त्रियों ने सार्थकता वादी तथा प्रकृति वादी शाखा के बीच के मार्ग को अपनाया है। धर्म वादी जैसे वाटेल विधि के दो वर्गों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं-- एक प्रकृति वादी स्तर पर तथा दूसरा सार्थकता वादी स्तर पर। इस प्रकार, उनके अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि प्राकृतिक विधि तथा सम्मती से बनाई गई विधि, दोनों पर ही आधारित है। यह मत प्रकृति वादी तथा सार्थकता वादी विचारधारा के विधिशास्त्रियों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की अपेक्षा उचित प्रतीत होता है। इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि पूर्णतया ना तो प्राकृतिक विधि पर और ना ही राज्यों की सहमति पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों में अधिकतर नियम राज्यों की सहमति के आधार पर आधारित हैं, जबकि उनमें से कुछ वास्तव में प्राकृतिक विधि से बने हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत (Sources of International law)

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषयों पर अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम बाध्यकारी होते हैं। प्रश्न उठता है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि में ऐसे नियम कहां से बने? अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत से अभिप्राय उन पद्धतियों एवं तत्वों से है, जिनसे अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों का निर्माण हुआ है। किंतु कौन से वे तरीके हैं, जिनसे इन नियमों का निर्माण हुआ है अर्थात अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्त्रोत क्या है? यह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है, क्योंकि इस विषय में कोई संहिताबद्ध नियम नहीं है अंतर्राष्ट्रीय विधि गतिशील है तथा समय के क्रम के साथ इस में तीव्रता से परिवर्तन हो रहा है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण अंतरराष्ट्रीय समुदाय में विधि निर्माण की कई पद्धतियों का समावेश भी आवश्यक हो

जाता है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि जब भी विधि निर्माण की नई पद्धतियां विकसित होंगी वे संधियों और रूढ़ियों के अधीन ही होंगी। अतः जब भी कोई नया स्रोत सामने आएगा वह अप्रत्यक्ष रूप से उन्हीं स्रोतों में समावेश हो जाएगा जो अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के स्टेट्यूस के अनुच्छेद 38(1) मैं वर्णित है। अंतर्राष्ट्रीय विधि के निम्नलिखित स्रोत हैं:-----

(1) **<u>रूढ़ि(Custom)--</u>** रूढ़ि अंतर्राष्ट्रीय विधि का मूल और सबसे प्राचीन स्रोत है किसी समय यह स्रोतों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के अधिकतर नियम रूढ़िजन्य नियमों से ही निर्मित होता था। रोमन विधि से उद्भुत होने वाली प्रथा शब्द का प्रयोग बहुधा अभ्यास के लिए किया जाता है। प्रथा का तात्पर्य से अभ्यास से हैं, जिसे एकरूपता तथा सामान्यतया पालन करने के कारण राज्यों द्वारा कर्तव्य के रूप में पालन किया जाता है। यद्यपि यह कर्तव्य विधिक प्रकृति का नहीं है लेकिन यह नैतिक शिष्टता की प्रकृति का है। कभी-कभी प्रथा को भी समान परिस्थितियों में निश्चित प्रकार से आचरण के स्वभाव के रूप में माना जाता है इसलिए प्रथा रूढ़ि तब हो जाती है, जब उसे वैधानिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। कोई भी प्रथा अंतरराष्ट्रीय रूढ़ि उस समय बन जाती है, जब वह इसको न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व हो जाती है कि इसे विधि के रूप में अन्य संबद्ध राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। रूढ़ि उसी समय निर्मित हुई मानी जाएगी, और रूढ़िगत नियम बन जाने से उसको बाध्यकारी प्रभाव होने लगता है। **<u>असायलम</u>** वाद में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अंतर्राष्ट्रीय विधि में रूढ़ियों की विशेषताओं को नियम बद्ध किया है। इसके अनुसार जो पक्षकार, रूढ़ियों पर विश्वास करता है, उसको सिद्ध करना चाहिए कि एक रूढ़ि ऐसे ढंग में स्थापित हो गई है कि वह दूसरे पक्ष कार पर बाध्यकारी है।

अंतर्राष्ट्रीय रूढ़ि के अस्तित्व को स्थापित करने के क्रम में प्रमुखतया तीन तत्वों की उपस्थिति की अपेक्षा की जाती है, जो निम्नलिखित हैं—

- **अवधि** - जब कोई विशिष्ट आचरण राज्यों द्वारा लंबी अवधि से अभ्यास में लाया जाता है, तब किस की प्रवृत्ति रूढ़ि बनने की हो जाती है किसी प्रथा को रूढ़ि रूप में परिवर्तित होने में कितना समय लगता है, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देना कठिन है। **यंग जैकब और जोहाना** बाद में **लॉर्ड स्टोवेल** ने कहा है कि 100 वर्ष की बीती हुई अवधि किसी रूबी को बनाने के लिए पर्याप्त है।
- **निरंतरता और समानता--** किसी भी प्रथा का राज्यों द्वारा निरंतर अनुसरण किया जाना आवश्यक है। स्थाई अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने लोटस बाद में यह कहा था कि अभ्यास निरंतर और समान होना चाहिए। कोई भी आचरण बार-बार और नियमित रूप से अभ्यास में लाए जाने से रोटी में परिवर्तित हो जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि आचरण के प्रयोग में एकरूपता हो, फिर भी इसका प्रयोग अधिकतर मामलों में होना चाहिए।
- **सामान्यतया-** एक आचरण को रूढ़ि में परिवर्तित होने के लिए यह आवश्यक है कि उसको अधिकांश राज्यों द्वारा प्रयोग में लाया जा रहा हो। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि आचरण सभी राज्यों द्वारा स्वीकार किया गया हो, फिर भी स्वीकार करने वाले राज्यों की संख्या पर्याप्त हो।

(2) **<u>संधियां(Treaties)-</u>** वर्तमान समय में संधियां अंतर्राष्ट्रीय विधि की सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 39(1)(क) के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय, चाहे वे साधारण हो या विशिष्ट न्यायालय द्वारा लागू किए जाएंगे ऐसा इसलिए है कि संधियों में राजू की सम्मति अभिव्यक्त रूप से होती है और इसमें राज्य वर्णित

नियमों का पालन करने की स्वीकृति प्रदान करते हैं। **संधियां** दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य विषयों के मध्य करार हैं, जिनके द्वारा वे अपने संबंधों को स्थापित करते हैं

अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 38 (1) (क) के अनुसार **सामान्य** तथा **विशिष्ट** दोनों ही संधियों को लागू करेगा, सामान्य **संधियां** वे होती हैं, जिसमें विश्व समुदाय के अधिकतर राज्य उनके पक्षकार होते हैं। समयानुसार वे सार्वभौमिक अंतरराष्ट्रीय विधि के नियमों को निश्चित रूप देते हैं, जो विश्व समुदाय के सभी सदस्य राज्यों पर बाध्यकारी होते हैं

विशिष्ट संधियों को द्विपक्षीय संधियों या अनेक पक्षीय संधियों के नाम से जाना जाता है यह संधि दो या दो से अधिक प्रभुत्व संपन्न राज्यों की सरकारों के मध्य करार है। पक्षकारों की संख्या दो या दो से अधिक होती है। इन्हें संविदा त्मक प्रकार की **संधियां** या संधि संविदा भी कहा जाता है। ऐसी **संधियां** दो या अधिक राज्यों के लिए विधि का सृजन करती हैं तथा इसके लिए यह विधि निर्माण कारी संधियों से भिन्न है, जो अधिकतर राज्यों के लिए विधि का सृजन करती हैं। यह उल्लेखनीय है कि इन दोनों में कोई स्पष्ट अंतर नहीं है फिर भी निसंदेह, विशिष्ट संधियां सामान्य विधि के नियमों को प्रतिपादित नहीं करती, फिर भी उनका अत्यधिक महत्व है।

(3) **<u>सभ्य राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के सामान्य सिद्धांत</u>- सभ्य** राष्ट्रों द्वारा मान्यता प्राप्त विधि के सामान्य सिद्धांतों से अभिप्राय उन सिद्धांतों से हैं, जो विश्व समुदाय के अधिकतर या सभी सभी राज्यों द्वारा अपने राष्ट्रीय विधि के विनियमन में प्रयोग में लाए जाते हैं तथा यह अपने विकसित होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय विधि में भी प्रयोग में लाए जा सकते है। मान्यता प्राप्त विधि के सामान्य सिद्धांत से तात्पर्य

यह है कि विनियम जो राज्यों के राष्ट्रीय विधि में लागू होते हैं तथा विश्व समुदाय के अधिकतर राज्य उस नियम का अनुमोदन करते हो जब विधि के किसी सिद्धांत में उक्त तत्व विद्यमान हो जाते हैं, सब अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय इसे अंतरराष्ट्रीय विवादों में लागू कर सकता है।

(4) **न्यायिक विनिश्चय** - न्यायिक विनिश्चय अंतर्राष्ट्रीय विधि के गौण या सहायक स्रोत माने जा सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय के निर्णय किसी पूर्व निर्णय का सृजन नहीं करते, न्यायिक विनिश्चय का किसी भी विवाद के पक्षकारों के अतिरिक्त इनकी कोई बाध्यता नहीं होती। फिर भी, सहायक स्रोत का तात्पर्य द्वितीयक स्रोत से नहीं हो सकता क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय विधि के कई स्रोतों में विधि को निर्धारित करने में न्यायिक विनिश्चय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। न्यायिक विनिश्चय शीर्षक के अंतर्गत निम्नलिखित न्यायालयों के विषयों पर पृथक रूप से विचार किया जा सकता है-

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय - वर्तमान समय में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय न्यायिक अभिकरण है। तथापि, इसके निर्णय केवल मामले के पक्षकारों पर ही बाध्यकारी होते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय विधि के बाध्यकारी नियम को सृजित नहीं करते। न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 59 में यह स्पष्ट किया गया है कि न्यायालय के विनिश्चय, विवाद के पत्रकारों के अतिरिक्त किसी अन्य पर बाध्य कर नहीं होंगे।

- **अंतर्राष्ट्रीय अधिकरणों पंचाट** - अंतर्राष्ट्रीय अधिकरणों, जैसे स्थाई मध्यस्थम न्यायालय तथा अन्य अधिकरणों तथा ब्रिटिश अमेरिकी मिश्रित दावा अधिकरण एवं अन्य अधिकरणों के पंचाटो अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास में काफी योगदान दिया है।

- **राष्ट्रीय न्यायालयों के विनिश्चय** - राष्ट्रीय न्यायालयों के निर्णय अंतर्राष्ट्रीय विधि में विशेष महत्व नहीं रखते और इसीलिए ओपनहाइम ने राष्ट्रीय न्यायालयों के निर्णय को अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत के रूप में नहीं माना है। किंतु कई राज्यों के न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय यदि एक समान होते हैं तो वे अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियम बनने की प्रवृत्ति रखते हैं।
- **क्षेत्रीय न्यायालयों के विनिश्चय** - विशिष्ट क्षेत्र में विवादों को हल करने के लिए क्षेत्रीय अंतरराष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय विधि का तात्कालिक विकास है। ऐसे न्यायालयों के उदाहरण यूरोपीय समुदाय के न्याय का न्यायालय, यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय तथा अंतर अमेरिकी मानवाधिकार न्यायालय है। इनका विशिष्ट क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय विधि के विकास में काफी योगदान रहा है।

(5) **विधिवेत्ताओं के लेख** - अंतरराष्ट्रीय न्यायालय स्टेट्यूट के अनुसार विभिन्न राष्ट्रों के सुयोग्य एवं प्रख्यात विधिवेत्ताओं के ग्रंथ, लेख व शिक्षाएं अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को निर्धारित करने में सहायक होते हैं। स्टेट्यूट के अनुच्छेद 38(1) (घ) के अंतर्गत विधि बेताओं के लेखों को विधि के नियमों का निर्धारण करने के लिए गौण साधन माना गया है। अतः इन्हें अंतर्राष्ट्रीय विधि के मान्य स्रोतों की श्रेणी में नहीं रखा गया है। फिर भी सुयोग्य एवं प्रख्यात विधिवेत्ताओं के ग्रंथ वह लेख के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के निर्माण में सहायता मिलती है। उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि सुयोग्य एवं प्रख्यात विधिवेत्ताओं के ग्रंथ पर स्वतंत्र रूप से एक स्रोत की तरह विचारण नहीं किया जाएगा। विधिक लेखों की उपयोगिता विशेषकर अंतर्राष्ट्रीय विधि के उन क्षेत्रों में अधिक होती है, जहां संधि या रूढ़ि गत नियम अस्तित्व में नहीं

होते। सुयोग्य न्यायविदों के प्रलेखों को अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के निर्माण के लिए महत्व की दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के स्टेट्यूट के अनुच्छेद 38(1) (घ) के अधीन न्यायिक विनिश्चय के बाद स्थान मिला है। इस प्रकार, स्त्रोत का इस्तेमाल अंतिम आश्रय के रूप में लिया जा सकता है, अर्थात न्यायालय इसका प्रयोग उसी समय करता है, जब अन्य सभी स्रोत विवाद को निपटाने में असफल हो जाते हो।

(6) **साम्या** - अंतर्राष्ट्रीय विधि के स्रोत के रूप में साम्या शब्द का प्रयोग विधि के स्थापित नियमों की निष्पक्षता, युक्ति युक्तता तथा अनीति को ध्यान में रखकर किया जाता है। साम्या का उल्लेख अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के स्टेट्यूट में विधि निरूपणकारी अभिकरण के रूप में भी नहीं किया गया है क्योंकि इसको शामिल किए जाने से न्यायालय को असीमित अधिकार प्राप्त हो जाते। वास्तव में साम्या को न्यायालय द्वारा प्रयोग में नहीं लाया जाता। स्टेट्यूट के अनुच्छेद 38(2) के अधिनियम प्रावधान है कि यदि किसी मामले में राज्य पक्षकार अपनी सहमति दे देते हैं तो न्यायालय **एक्स एको इट बोनो** के आधार पर निर्णय दे सकता है। अन्य शब्दों में न्यायालय किसी विवाद का निपटारा अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम के अनुसार नहीं बल्कि न्याय और युक्तियुक्तता के आधार पर कर सकता है।

(7) महासभा के संकल्प - संयुक्त राष्ट्र की महासभा के संकल्प विधिक प्रकृति के नहीं होते अतः यह राज्यों पर बंधनकारी नहीं होते। यह अपने सदस्यों पर किसी भी विधिक बाध्यता को सृजित नहीं करते चाहे वे एक मत से या बहुमत से स्वीकार किए गए हो यह इनके विषय में सभी राज्यों के समान हित के विषय हो। महासभा द्वारा स्वीकार किए गए संकल्पों के माध्यम से जिन सिद्धांतों ने अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों की प्रास्थिति अर्जित की है, उनमें से कुछ के उदाहरण हैं-

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में बल के प्रयोग या धमकी को प्रति सिद्ध करना, आत्मरक्षा का अधिकार तथा आत्म निर्णय का अधिकार। महत्वपूर्ण विधि निर्माण संकल्पों के उदाहरण हैं : **मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948, युद्ध के प्रयोजनों के लिए परमाणु शस्त्रों के प्रयोग का निषेध, 1961, उपनिवेशी देशों तथा लोगों को स्वतंत्रता प्रदान करने की घोषणा, 1960, प्राकृतिक स्रोतों पर स्थाई प्रभुत्व संपन्नता की घोषणा, 1962, बाह्य अंतरिक्ष की खोज एवं प्रयोगों में राज्यों के क्रियाकलापों को साबित करने वाले विधिक सिद्धांतों की घोषणा, 1963, मैत्रीपूर्ण संबंध घोषणा, 1970, आक्रमण को परिभाषित करने वाला संकल्प, 1974,** इत्यादि।

अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि का संबंध(Relationship of International Law and Municipal Law)

अंतर्राष्ट्रीय विधि राज्यों के संबंधों में तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के अन्य विषयों पर लागू होती है, जबकि राष्ट्रीय या राज्य विधि, जिसे नगरपालिका विधि कहा जाता है, राज्य के अंतर्गत व्यक्तियों तथा नीतिगत इकाइयों पर लागू होती है, जिन को उसके अंतर्गत अधिकार तथा कर्तव्य प्राप्त होते हैं। ऐसा लगता है कि इन दोनों प्रणालियों में शायद ही कोई संबंध हो, क्योंकि यह दो भिन्न विधिक प्रणालियों का गठन करती हैं, जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में प्रभावी हैं तथा यह विभिन्न न्यायालयों द्वारा अपने विषयों पर स्पष्ट रुप से लागू की जाती हैं, किंतु ऐसा नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के नियमों के बीच संबंध का प्रश्न विधिक सिद्धांत के अत्यधिक

विवादास्पद प्रश्नों में से एक है। मूलतः, दोनों विधियों के बीच संबंध का प्रश्न सैद्धांतिक महत्व का था, अर्थात क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि सार्वभौमिक विधि व्यवस्था के अंग हैं या यह विधि की दो विभिन्न प्रणालियां हैं। किंतु, वर्तमान समय में, इस प्रश्न का व्यावहारिक महत्व हो गया है। जब अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के नियमों के बीच विरोध होता है, तब न्यायालय को किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में कठिनाई होती है। अंतर्राष्ट्रीय अभिकरण के सम्मुख प्रमुख प्रश्न यह उठता है कि- क्या अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधि पर प्रमुखता प्राप्त करती है, जा राष्ट्रीय विधि को अंतर्राष्ट्रीय विधि पर प्रमुखता प्राप्त है। यदि यह विवाद राष्ट्रीय न्यायालय के सामने उत्पन्न होता है, तो उत्तर इस पर निर्भर करता है कि किस सीमा तक राज्य की संविधानिक विधि न्यायालयों को अंतर्राष्ट्रीय विधि को लागू करने के लिए निर्देश देती है। प्रायः, उन सभी मामलों में राष्ट्रीय न्यायालय के विनिश्चय करने में कठिनाई उत्पन्न होती है, जिनमें अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को लागू करने से संबंधित प्रश्न आता है। उदाहरण के लिए अंतर्राष्ट्रीय विधि द्वारा प्रदान की गई राजनयिक उन्मुक्तियाँ उस समय तक अर्थहीन बनी रहेगी जब तक उन्हें राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यता नहीं दी जाती है। प्रत्यर्पण के रूढ़िगत नियम राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा ही लागू किए जाते हैं। वास्तव में, अंतर्राष्ट्रीय विधि राष्ट्रीय विधिक प्रणाली के सहयोग तथा समर्थन के बिना कार्य कर ही नहीं सकती। दोनों प्रणालियों के संबंध का प्रश्न आधुनिक अंतर्राष्ट्रीय विधि में और भी महत्वपूर्ण हो गया है, क्योंकि व्यक्तियों के मामले जो राष्ट्रीय न्यायालयों के सम्मुख आते हैं वह भी अंतर्राष्ट्रीय विधि के विषय हो गए हैं तथा इनका वृहत्तर भाग प्रत्यक्षतः व्यक्तियों के क्रियाकलापों से भी संबंधित हो गया है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि विधि की दोनों प्रणालियों के संबंध तथा उनके बीच प्रमुखता को सुनिश्चित करना अब आवश्यक हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के संबंध के प्रश्न पर विधिशास्त्रियों के मतों में भिन्नता होने के कारण कई सिद्धांत विकसित हुए हैं। इनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं –

द्वैतवादी सिद्धांत (Dualistic Theory)- इस सिद्धांत के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा विभिन्न राज्यों की राष्ट्रीय विधि दो भिन्न, पृथक तथा स्व-अन्तरविस्ट विधिक प्रणालियाँ हैं। पृथक प्रणाली होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि उस समय तक राज्य के आंतरिक विधि का भाग नहीं होती जब तक विशिष्ट मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियम राज्य के अंतर्गत लागू नहीं होते। ऐसा राज्य की आंतरिक विधि द्वारा उनके अंगीकरण के कारण होता है तथा वे आंतरिक विधि के रूप में लागू होते हैं, न कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि के रूप में।

- द्वैतवादी मत को 1899 में प्रसिद्ध विद्वान **ट्रिपेल** द्वारा प्रतिपादित किया गया था बाद में इस सिद्धांत का अनुसरण अन्तर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि दोनों को पूर्णतः दो भिन्न विधिक प्रणालियों की तरह समझता है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय विधि की प्रकृति मूल रूप से राष्ट्रीय विधि की प्रकृति से भिन्न है।

स्टार्क के अनुसार, 1980 के बाद मैं अंतर्राष्ट्रीय विधि का विभिन्न क्षेत्रों में काफी विस्तार हुआ है, जबकि राष्ट्रीय विधि की विषय वस्तु का क्षेत्र सीमित रहा है।

एंजीलोटी के अनुसार, यह दोनों प्रणालियां इस प्रकार से सुभिन्न है कि इन दोनों के मध्य कोई विरोध संभव नहीं है, लेकिन इससे यह आशय

नहीं है कि अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियम राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा कभी लागू नहीं किए जा सकते।

राष्ट्रीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों को तब लागू करेंगे, जब उन्हें राष्ट्रीय विधि के रूप में मान लिया जाएगा। यह तभी हो सकता है जब अंतर्राष्ट्रीय विधि अर्थात रूढ़ीजन्य तथा संधिबद्ध नियम **'विनिर्दिष्ट अंगीकरण'** की प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीय विधि के नियम हो जाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि के मध्य विरोध की स्थिति में **"ग्रेसो बल्गारियन कम्युनिटीज केस"** में, स्थाई अंतरराष्ट्रीय न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय महत्वपूर्ण है। इस महत्वपूर्ण केस का निर्णय था कि अंतर्राष्ट्रीय विधि का सामान्यत: स्वीकृत सिद्धांत यह है कि जो देश, संधि के संविदा कारी प्रकार हैं, उनके मध्य संबंध में राष्ट्रीय विधि के प्रावधान संधि के प्रावधानों पर अभिभावी नहीं हो सकते।

एकात्मक सिद्धांत(Monistic Theory) – 18 वीं शताब्दी में दो जर्मन विद्वानों **मौसर** और **मार्टेंस** ने प्रतिपादित किया था। एकात्मक सिद्धांत के अनुसार, केवल एक ही विधि प्रणाली अस्तित्व में होते हैं अर्थात **घरेलू विधिक व्यवस्था**। इस सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रीय विधि में शामिल करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इसे स्वयं द्वारा बनाया गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एकात्मक सिद्धांत का विकास ऑस्ट्रिया व विधि शास्त्री **केलसन** द्वारा किया गया। एकात्मक सिद्धांत के अनुसार सभी विधियों का निर्माण केवल व्यक्तियों के लिए ही किया जाता है। राष्ट्रीय विधि उन पर प्रत्यक्ष रूप से आबद्धकर होती है, जबकि अंतरराष्ट्रीय उन पर राज्यों के माध्यम से आबद्धकर होती है।

समन्वयकारी सिद्धांत (Theory of Hormonistion) - इस सिद्धांत के प्रवर्तक ओ कोनेल है। इस सिद्धांत के अनुसार, व्यक्ति अनन्य रूप से ना तो राज्य की विधिक

व्यवस्था में और ना ही अंतर्राष्ट्रीय विधिक व्यवस्था में अपने जीवन को व्यतीत करता है। यह दोनों की ही अधिकारिता के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि वह अपना जीवन दोनों में व्यतीत करते हैं। इस प्रकार दोनों ही विधिक व्यवस्थायें व्यक्तियों की समस्याओं को हल करने के लिए बनी है। यद्यपि, अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा राष्ट्रीय विधि इस अर्थ में स्वायत्त हैं कि यह मानव आचरण के भिन्न-भिन्न पहलुओं से संबंध रखती हैं, फिर भी दोनों का ही लक्ष्य मूल रूप से मानव कल्याण है। इसलिए दोनों प्रणालियों को समन्वय कारी होना चाहिए। समन्वयकारी सिद्धांत का पालन कई मामलों में किया गया है, यह मामले हैं - **क्राफ्ट लिमिटेड बनाम pan-american एयरवेज, आर0 बनाम चीफ इमिग्रेशन ऑफिसर हीथ्रो एयरपोर्ट, फोंदरगिल बनाम मोनार्क एयरलाइंस लिमिटेड** आदि।

विनिर्दिष्ट ग्रहणीकरण मत (Specific Adoption Theory)- इस मत के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय विधि को प्रत्यक्ष रूप से राज्य विधि के क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकता। इसको लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि इसको विशिष्ट रूप से राज्य विधि के क्षेत्र में ग्रहण या स्वीकार किया जाए। **जौली जॉर्ज बनाम बैंक ऑफ़ कोचीन** के मामले में भारतीय उच्चतम न्यायालय ने मानवीय अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के बारे में कहा कि राज्य पक्षकारों के सकारात्मक प्रतिबद्धता से गृह में विधायिनी कार्यवाही प्रेरित होती है, परंतु इससे प्रसंविदा स्वत: ही भारतीय विधि का प्रयोज्य भाग नहीं बन पाती। भारतीय संसद द्वारा **टोक्यो अभिसमय 1975, राजनयिक संबंधों पर वियना अभिसमय 1972, हेग अभिसमय 1970** तथा **मॉन्ट्रियल अभिसमय** के प्रावधानों को लागू करने के लिए नागरिक उड्डयन की सुरक्षा के विरुद्ध अवैध कार्यों के दमन अधिनियम 1982 पारित करना इस बात की पुष्टि करता है।

रूपांतरणवाद सिद्धांत(Transformation Theory) - इस सिद्धांत के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय विधि और विशेषकर अंतरराष्ट्रीय संधियों के नियमों को राज्य विधि के

क्षेत्र में लागू करने के लिए पहले इनका रूपांतरण आवश्यक है। राज्यों के अभ्यास इंगित करते हैं कि राज्य उस सिद्धांत का अनुसरण करते हैं, जिसे वे स्वयं अपनी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक प्रणाली के अनुसार अधिक समुचित समझते हैं। अंतर्राष्ट्रीय विधि रूढ़िगत तथा संधिबद्ध को राज्यों द्वारा किस सीमा तक लागू किया जाता है, इस संबंध में राज्य अभ्यास भिन्न-भिन्न हैं-

ग्रेट ब्रिटेन का अभ्यास- ग्रेट ब्रिटेन में, रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधियों को भिन्न भिन्न रूप में लागू किया जाता है

(1) **रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि**- उस रूढ़िगत अंतरराष्ट्रीय किसी को ब्रिटेन की विधि के रूप में माना जाता है, जिसे सार्वभौमिक रूप से मान्यता प्राप्त है या जिसे ग्रेट ब्रिटेन की सहमति प्राप्त हो जाती है, लेकिन वे नियम उसी समय लागू किए जाते हैं, जब वे ब्रिटिश अधिनियमों या अंतिम प्राधिकारी के पूर्व विनिश्चयों से असंगत ना हो।

अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के बारे में ब्रिटेन के इस अभ्यास को **समावेशन के सिद्धांत** के नाम से जाना जाता है। समावेशन के सिद्धांत को ब्रिटेन में कई मामलों में लागू किया गया, वे मामले हैं- **वारविट मामला, ट्रीलेट बनाम बाथ मामला, हिथ फील्ड बनाम चिल्टन, डोल्डर बनाम लॉर्ड अटिंग फील्ड आदि।**

(2) **संधियाँ** - संध्या को लागू करने के संबंध में ब्रिटिश अभ्यास प्रमुख रूप से संवैधानिक प्रावधानों पर आधारित है। कुछ संधियाँ न्यायालयों पर केवल तब आबद्धकर होती हैं, जब संसद द्वारा उच्च संधि से संबंधित अधिनियम पारित कर दिए जाते हैं। इन संधियों में व्यक्तिगत अधिकारों या दायित्वों को प्रभावित करने वाली, वित्तीय बाध्यताओं को अधिरोपित करने वाली, या जो न्यायालयों में उनके प्रवर्तन के लिए समन विधि या स्टेट्यूट बनाने के संशोधन की अपेक्षा रखती है ।

ब्रिटिश अभ्यास से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ब्रिटिश विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के मध्य विरोध उत्पन्न होने की स्थिति में है ब्रिटिश विधि की ब्रिटिश न्यायालयों पर बाध्य कर होगी।

भारतीय अभ्यास- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51 के अधीन विश्व के प्रति भारत की सामान्य बाध्यता के लिए प्रावधान है। इस अनुच्छेद के अनुसार-

(1) अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा की अभिवृद्धि हो।

(2) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंध बने रहे।

(3) अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं को राज्यों के परस्पर व्यवहार में आदर मिले।

(4) अंतर्राष्ट्रीय विवादों का माध्यस्थम द्वारा निपटाने के लिए प्रोत्साहन मिले।

यद्यपि अनुच्छेद 51 रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधिबद्ध विधि को एक समान मानता है फिर भी रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि तथा संधियों के लागू होने की विवेचना पृथक रूप से की जा सकती है ।

(1) **रूढ़िगत अंतर्राष्ट्रीय विधि**- रूढ़िगत अंतरराष्ट्रीय विधि के संबंध में भारतीय न्यायालय ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अंगीकृत किए गए समावेशन के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार भारतीय न्यायालय अंतर्राष्ट्रीय विधि के रूढ़िगत नियमों को लागू करेंगे, यदि उन पर राष्ट्रीय विधि के स्पष्ट नियम अभिभावी नहीं होते हैं।

एडीएम जबलपुर बनाम शुक्ला के मामले में **न्यायमूर्ति एच आर खन्ना ने** अपने विसम्मतकारी मत में निर्णय दिया कि यदि राष्ट्रीय विधि तथा अंतर्राष्ट्रीय विधि के बीच विरोध है तो न्यायालय राष्ट्रीय विधि को परिवर्तित करेंगे।

ग्रामोफोन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड बनाम वीरेंद्र बहादुर पांडे के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय का संप्रेक्षण अंतर्राष्ट्रीय विधि के

रूढ़िगत नियमों के आबद्धकर बल से संबंधित था। इस वाद में समावेशन का सिद्धांत लागू किया गया।

(2) **संधियाँ** - भारतीय विधि में संधियों की स्थिति के संबंध में दो विचारधाराएं प्रचलन में हैं-

प्रथम विचारधारा के अनुसार **संधियाँ** जब तक विधान द्वारा क्रियान्वित नहीं हो जाती, वह न्यायालयों पर आप बंद कर नहीं होंगी। भारतीय न्यायालय द्वारा कई मामलों में निर्णय दिया गया कि संधि को अभिव्यक्त रूप से परिवर्तित करने की अपेक्षा की जाएगी। यह मामले हैं- **निरमा बनाम राजस्थान, शिवकुमार शर्मा बनाम भारत संघ, मोतीलाल बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, मगन भाई बनाम भारत संघ, जोली जॉर्ज वर्गीज बनाम बैंक ऑफ़ कोचीन आदि.**

दूसरी विचारधारा के अनुसार भारत में सभी संधियां विधान द्वारा कार्यान्वयन की अपेक्षा नहीं करती। केवल जो **संधियाँ** व्यक्तिगत अधिकारों को प्रभावित करती हैं, उनके ही प्रवर्तनीय होने के लिए विधान द्वारा कार्यान्वयन की अपेक्षा की जाती है।

मगन भाई ईश्वर भाई एवं अन्य बनाम भारत संघ के मामले में दूसरी विचारधारा को अपनाया गया है। निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि दूसरी विचारधारा अधिक सुनिश्चित प्रतीत होती है।